मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का अध्ययन

- ए० नागराज

परिभाषा :

"मनोविज्ञान सचेतनशीलता एवं उसकी गुणात्मक विकास का अध्ययन है ।"

"संस्कार-पूर्णता के अर्थ में की गई कारितायें अर्थात क्रियापूर्णता एवं आचरण-पूर्णता के अर्थ में किया गया स्वीकार्य योग्य प्रयोजन कारी अवधारणाओं की प्रस्थापना प्रयास एवं प्रक्रिया से है ।"

आधार :-

चैतन्य प्रकृति के विकास के क्रम में गुणात्मक परिवर्तन विकास एवं उसका क्रम ।

अनिवार्यता :

(1) मनुष्य का मूल मूर्त रूप चैतन्य अर्थात मन, वृत्ति चित्त, बुद्धि और आत्मा समुच्चय की मौलिकता, यही सचेतनशीलता का स्वरूप है ।

(2) मनुष्य का आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति जैसी अक्षय शक्ति पूर्वक ही व्यवहार एवं व्यवसाय करना और मूल शक्तियों की मौलिकता से अवगत होना ।

(3) मनुष्य-मनुष्य के साथ व्यवहार करने, मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ व्यवसाय करने, अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने की जो जिज्ञासा है, उसमें सफलता प्राप्तकरना ।

(4) भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान से मनुष्य सुखी होना चाहता है इसे सफल एवं सर्व-सुलभ बनाना

(5) मनुष्य संस्कार पूर्वक ही अभ्युदयशील होने के कारण सार्वभौम संस्कार पद्धति को विकसित करना ।

(6) अस्तित्व ही सह-अस्तित्व होने के कारण मानव में सह-अस्तित्व को विकसित करना ।

(7) प्रत्येक चैतन्य इकाई में सचेतनशील संस्कार ग्राही पात्रता होने के कारण उसमें मानवीय संस्कार परिष्कृत परिष्कृतपूर्ण अवधारणाओं को स्थापित करने की परम्परा को स्थापित करना, मनुष्य कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र होने के कारण अभ्युदय-शील सर्वतोमुखी विकासशील परम्परा को स्थापित करना ।

प्रयोजन :

(1) मानवीय सचेतना पूर्ण संस्कार परम्परा में क्रियापूर्णता (सार्थकता) सहज सुलभ होना ।

(2) मानव में मानवीयता का स्वत्व के रूप में सर्व-सुलभ होना ।

(3) मानव जाति, धर्म, कर्म एवं शिक्षा संस्कारों का सर्वसुलभ तथा पहचान के लिये नामकरण का होना ।

क्रमशः 2/-

तत्वतः मनोविज्ञान चैतन्य प्रकृति का एवं उसके क्रिया कलाप का विधिवत अध्ययन है । जिसे चैतन्य संवेदनात्मक विज्ञान कह सकते हैं । मनोविज्ञान शब्द एक रूढ़िगत है, इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है । प्रत्येक मनुष्य में चैतन्य पद, धर्म एवं रूप समान है । गुण और स्वभाव में विविधता पाई जाती है । इन विविधताओं का मूल कारण संस्कार की विविधता ही है । मानवीय संस्कार पूर्वक मनुष्य सह-अस्तित्ववादी ही है । संस्कार विविधता वश मनुष्य किसी परिवार समुदाय या वर्ग के साथ मानवता का परिचय देता है, साथ ही दूसरे परिवार वर्ग एवं समुदाय के साथ अमानवीयता का परिचय भी देता है । अधिकांश ही ऐसा परिचय मनुष्य ने दिया है । जो ऐतिहासिक तथ्य है । सामाजिकता के लिये मनुष्य के साथ सह-अस्तित्व एवं दूसरे के साथ सह-अस्तित्व पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ । इसी संकट के कारण मानव सार्वभौम संस्कार से संबद्ध होने के लिये बाध्य हुआ है । संघर्ष और युद्ध मानव की सुरक्षा का आधार सिद्ध नहीं हुआ । जिनके साथ असह-अस्तित्व की भावना पनपती है । इस स्थिति में कल्याण के लिये कोई सहायक तत्व मनुष्य में निहित नहीं होता, जबकि मनुष्य अथ शक्ति सम्पन्न विशालतम रूप में प्रतिभा और व्यक्तित्व का परिचय देने, इतिहास को स्थापित करने योग्य होते हुए परिपूर्ण अथवा अपरिमार्जित संस्कारवश ही मनुष्य सीमाओं में सिमटकर एवं सुरक्षा की प्राथमिकता वश अन्य के प्रति अविश्वास की मानसिकता में आ जाता है, फलतः भय ग्रस्त होना स्वाभाविक है । मनुष्य से मनुष्य भयभीत होने के लिये असह-अस्तित्व का होना आवश्यक है । भय के साथ ही या भय ह वस्तुओं से सुरक्षित होने के लिये बाध्य करता है । फलतः संघर्ष और भय का चक्र मंडराता रहता है। यह मानव का अभीष्ट नहीं है । इससे मुक्ति पाने की दिशा में ही संस्कारों में उन्नत एवं सार्वभौमिक संस्कारों का सुझाव है ।

सार्वभौम चेतना शिक्षा संस्कार मानव जाति धर्म कर्म के रूप में प्रस्तावित है । मानवीय चेतना (मानवीय मूल्य और मूल्यांकन) मानवीयता के अर्थ में मानवीयता सह-अस्तित्व समृद्धि, समाधान एवं अभय के अर्थ में चरितार्थ एवं सिद्ध होती है । मनुष्य में संस्कार पूर्वक ही संचेतना का परिवर्तित होना पाया जाता है । जैसे बच्चों को पढ़ाते समय बच्चों में गलती करना देखा जाता है । किन्तु पढ़ाने के क्रमिक प्रयास से बच्चे सही करने के अधिकार में हो जाते हैं । इस सामान्य उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है क जन्म से मनुष्य के पास गलती करने की स्थिति रहती है साथ ही संस्कार पूर्वक सही करना होता है ।

इसी प्रकार मनुष्य के मनुष्य के साथ कु-संस्कार अथवा अपरिमार्जित संस्कारवश अन्याय करता है एवं सु-संस्कार व उत्तम संस्कार वश न्यायपूर्ण व्यवहार करता है । अस्तु मनुष्य सु-संस्कार वश ही अभ्युदयशील होता है न कि वंशानुषांगिक ।

क्रमशः 3/-

चैतन्य इकाई की प्रतिष्ठा ही मनुष्य का स्वरूप है । स्वरूप ही शरीर के माध्यम क्रिया-व्यवहार में प्रकाशित होता है । जब मनुष्य शरीर (माध्यम) को ही स्वरूप मानने लगता है व स्वरूप को भूल जाता है । ऐसी स्थिति में देहात्मवादी बुद्धि वश इन्द्रीय व्यापार को ही जीवन का कार्यक्रम समझ लेता है । इसी भुलावे वश जीवन की विशालता को शरीर अथवा इन्द्रियों के कार्य व्यवहार की सीमा में सुखी होने के लिये यत्न प्रयत्न एवं प्रयास करता है जबकि सुख मूल्य, लघु-मूल्य में नहीं समाता, इसलिये इन्द्रियों के द्वारा सुख भासते हुए भी उसकी निरंतरता नहीं हो पाती । संकीर्णता वश ही ऐसे मनुष्य विशाल एवं विशालतम संवेदनशीलता संज्ञानीयता का संकीर्ण रूप में प्रयोग करते हैं । दल, वर्ग एवं परिवार सीमा में सीमित होने का एक महत्वपूर्ण कारण है, अस्तु मानव अपने जीवन की महत्ता को चैतन्य स्थिति के रूप में ही स्पष्टतया पहचान पाता है । तथा वैचारिक ग्रंथियाँ सुलझ जाती है ।

मनुष्य ही संस्कार पूर्वक अमानवीयता, मानवीयता एवं अति-मानवीयता के रूप में प्रकाशित होता है । प्रत्येक स्थिति के प्रकाशन के मूल में दृष्टियों की सक्रियता मूल्यों की अभिव्यक्ति एवं विषयों की प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति के योगफल में 6 दृष्टियाँ क्रियाशील होती है ।

प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य । स्वभाव मूल्य की अभिव्यक्तियाँ नौ प्रकार से होती है - हीनता, दीनता, क्रूरता, धीरता, वीरता एवं उदारता, दया कृपा एवं करुणा । मनुष्य में पाई जाने वाली प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति चार प्रकार के विषय, तीनों ईषणाएँ एवं मुक्ति के रूप में परिलक्षित है । इन्हीं के विभिन्न योगफल में मनुष्य ही 5 प्रकार से गण्य होता है । (1) पशु मनुष्य (2) राक्षस मनुष्य (3) मनुष्य (4) देव मनुष्य एवं दिव्य मनुष्य ।

इस प्रकार चैतन्य विज्ञान के अध्ययन से मनुष्य अपनी स्वयं की गुणात्मक स्थिति और गुणात्मकता की संभावना और अनिवार्यता संबंधी संस्कारों से सम्पन्न होने के लिये सहायक होता है फलतः "जीवन नित्य एवं जन्म मृत्यु एक घटना सिद्ध होता है ।"

- - -